

## ६. ध्यानयोग

श्रीभगवान बोले— जो मनुष्य केवल कर्मफल (के भोग) के लिए ही कर्म नहीं करता है, वही सच्चा संन्यासी और योगी है, केवल अग्नि का त्याग करने वाला संन्यासी नहीं होता तथा क्रियाओं का त्यागने वाला योगी नहीं होता. (६.०१)

हे पाण्डव, जिसे संन्यास कहते हैं, उसी को तुम कर्मयोग समझो, क्योंकि स्वार्थ के त्याग के बिना मनुष्य कर्मयोगी नहीं हो सकता. (५.०१, ५.०५, ६.०१, १८.०२ भी देखें) (६.०२)

निष्काम कर्मयोग को समत्वयोग की प्राप्ति का साधन कहा गया है और योगारूढ़ साधक के लिए समत्व (अर्थात् मानसिक संतुलन, आत्मसंयम) ही ईश्वरप्राप्ति का साधन है. जब मनुष्य इन्द्रियों के भोगों में तथा कर्मफल में आसक्त नहीं रहता है, उस समय सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग करने वाले (संतुलित) व्यक्ति को योगी कहते हैं. (६.०३-०४)

मनुष्य अपने मन और बुद्धि द्वारा अपना उद्धार करे तथा अपना पतन न करे, क्योंकि मन ही मनुष्य का मित्र भी है और मन ही मनुष्य का शत्रु भी है. जिसने अपने मन और इन्द्रियों को बुद्धि द्वारा जीत लिया है, उसके लिए मन उसका मित्र होता है, परन्तु जिनकी इन्द्रियां वश में नहीं होतीं, उसके लिए मन शत्रु के समान आचारण करता है. (६.०५-०६)

जिसने मन को अपने वश में कर लिया है, वह सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख तथा मान-अपमान में शान्त रहता है, ऐसे जितेन्द्रिय मनुष्य का मन सदा परमात्मा में स्थित रहता है. (६.०७)

ब्रह्मज्ञान और विवेक से परिपूर्ण, जितेन्द्रिय और समत्व बुद्धि वाला मनुष्य —जिसके लिए मिट्टी, पत्थर और सोना समान है— परमात्मा से युक्त अर्थात् योगी कहलाता है. (६.०८)

जो मनुष्य सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी, सम्बन्धियों, धर्मात्माओं और पापियों में भी समान भाव रखता है, वह श्रेष्ठ समझा जाता है. (६.०९)

आशरहित और स्वामित्वरहित साधक अपने मन और इन्द्रियों को वश में करके, एकान्त स्थान में अकेला बैठकर, मन को निरन्तर परमात्मा के ध्यान में लगावे. (६.१०)

साधक स्वच्छ भूमि के ऊपर क्रमशः कुश, मृगखाला और वस्त्र बिछे हुए अपने आसन पर — जो न बहुत ऊंचा और न बहुत नीचा हो — बैठकर मन को परमात्मा में एकाग्र करके, चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में करके, अन्तःकरण की शुद्धि के लिए ध्यानयोग का अभ्यास करे. (६.११-१२)

अपने शरीर, गले और सिर को अचल और सीधा रखकर, कहीं दूसरी ओर न देखते हुए, अपनी आंख और ध्यान को नासिका के अग्र भाग पर जमाकर, ब्रह्मचर्यव्रत में स्थित, भयमुक्त तथा शान्त होकर, मुझे ही अपना परम लक्ष्य मानकर, मुझ में ध्यान लगावे. (४.२९, ५.२७, ८.१०, ८.१२ भी देखें) (६.१३-१४)

इस तरह सदा मन को परमात्मा में ध्यान लगाने का अभ्यास करता हुआ संयमित मन वाला योगी परम निर्वाणरूपी शान्ति (अर्थात् मुक्ति) प्राप्तकर मेरे पास आता है. (६.१५)

परन्तु हे अर्जुन, यह योग उस मनुष्य के लिए सम्भव नहीं होता, जो अधिक खाने वाला है या बिल्कुल न खाने वाला है तथा जो अधिक सोने वाला है या सदा जागने वाला है. (६.१६)

समस्त दुःखों का नाश करने वाला यह योग नियमित आहार और विहार, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा तथा यथायोग्य सोने और जागने वाले को ही सिद्ध होता है. (६.१७)

जब पूर्णरूप से वश में किया हुआ चित्त समस्त कामनाओं से रहित होकर परमात्मा में ही भलीभांति स्थित हो जाता है, तब मनुष्य योगी कहा जाता है. (६.१८)

जिस तरह वायुरहित स्थान में स्थित दीपक चलायमान नहीं होता; परमात्मा में लगे हुए योगी के समाहित चित्त की वैसी ही उपमा दी गयी है. (६.१९)

जब ध्यानयोग के अभ्यास से चित्त शान्त हो जाता है, तब साधक परमात्मा को (ध्यान से शुद्ध हुए मन और) बुद्धि द्वारा देखकर परमात्मा में ही संतुष्ट रहता है. (६.२०)

योगी इन्द्रियों से परे, बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य, अनन्त सुख का अनुभव करता है; जिसे पाकर वह परमात्मा से कभी दूर नहीं होता. (कठो.उ. ३.१२ भी देखें) (६.२१)

परमात्मा की प्राप्ति के बाद साधक उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है. इस अवस्था में स्थित योगी बड़े भारी दुःख से भी विचलित नहीं होता है. (६.२२)

दुःख के संयोग से वियोग ही योग कहलाता है, जिसे जानना चाहिए, तथा इस ध्यानयोग का अभ्यास उत्साह और निश्चयपूर्वक करना चाहिए. (६.२३)

सम्पूर्ण सकाम कर्मों का परित्यागकर, बुद्धि द्वारा सभी इन्द्रियों को अच्छी तरह वश में करके, अन्य कुछ भी चिन्तन न करता हुआ, धीरे-धीरे अभ्यस्त बुद्धि द्वारा मन को परमात्मा में लगाकर साधक शान्ति प्राप्त करता है. (६.२४-२५)

यह चंचल और अस्थिर मन जिन जिन विषयों में विचरण करे, उनसे हटाकर मनको परब्रह्म परमात्मा, श्रीकृष्ण, के चिन्तन और मनन में ही लगाना चाहिए. (६.२६)

जिसका मन शान्त है और जिसकी (काम, क्रोध, लोभ आदि) रजोगुण प्रवृत्तियां नष्ट हो गयी हैं, ऐसे पापरहित ब्रह्मस्वरूप योगी को परम आनन्द प्राप्त होता है. (६.२७)

ऐसा पापरहित योगी अपने मन को सदा परमेश्वर में लगाता हुआ सुखपूर्वक परब्रह्म परमात्मा की प्राप्तिरूपी परम आनन्द का अनुभव करता है. (६.२८)

योगयुक्त मनुष्य सबों में सर्वव्यापी परमात्मा को तथा परमात्मा में सबों को देखने के कारण समस्त प्राणियों को एक भाव से देखता है. (४.३५, ५.१८ भी देखें) (६.२९)

जो मनुष्य सब जगह तथा सब में मुझ सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्मा (श्रीकृष्ण) को ही देखता है और सबको मुझ में ही देखता है, मैं उससे अलग नहीं रहता तथा वह भी मुझ से दूर नहीं होता. (६.३०)

जो मनुष्य अद्वैतभाव से सम्पूर्ण भूतों में मुझ परमात्मा को ही स्थित समझकर मेरी उपासना करता है, वैसा योगी, किसी भी हालत में क्यों न रहे, मुझ में ही स्थित रहता है. (६.३१)

हे अर्जुन, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है, जो सबों को अपने जैसा समझे और दूसरों के दुःख और पीड़ा का अनुभव कर सके. (६.३२)

अर्जुन बोले— हे मधुसूदन, आपके द्वारा कहे गये ध्यानयोग की यह समत्व अवस्था — मन के चंचल होने के कारण — स्थायी नहीं हो सकती है; क्योंकि हे कृष्ण, यह मन बड़ा ही चंचल, दुष्ट, बलवान और दृढ़ है. अतः इसे वश में करना वायु को वश में करने की तरह कठिन है. (६.३३-३४)

श्रीभगवान बोले— हे महाबाहो, निस्सन्देह यह मन बड़ा ही चंचल और आसानी से वश में होने वाला नहीं है; परन्तु हे कुन्तीपुत्र, मन को (ध्यान आदि का) अभ्यास और वैराग्य के द्वारा वश में किया जाता है. (६.३५)

जिसका मन वश में नहीं है, उसके द्वारा परमात्मा की प्राप्ति कठिन है, परन्तु वश में किये हुए मन वाले प्रयत्नशील व्यक्ति को साधना करने से योग प्राप्त होना सहज है, ऐसा मेरा मत है. (६.३६)

अर्जुन बोले— हे कृष्ण, श्रद्धालु, परन्तु असंयमी व्यक्ति, जो योग मार्ग से विचलित हो जाता है, ऐसा साधक योग की सिद्धि को न प्राप्तकर किस गति को प्राप्त होता है? (६.३७)

हे महाबाहो कृष्ण, क्या भगवत्प्राप्ति के मार्ग से गिरकर आश्रयरहित व्यक्ति (भोग और योग) दोनों से वंचित रहकर, छिन्न-भिन्न बादल की तरह नष्ट तो नहीं हो जाता? (६.३८)

हे कृष्ण, मेरे इस संशय को सम्पूर्णरूप से दूर करने में आप ही समर्थ हैं, क्योंकि आपके सिवा कोई दूसरा इस संशय को दूर करने वाला मिलना संभव नहीं है. (१५.१५ भी देखें) (६.३९)

श्रीभगवान बोले— हे अर्जुन, योगी का न तो इस लोक में न परलोक में ही नाश होता है. हे तात, शुभ काम करने वाला कोई भी व्यक्ति दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है. (६.४०)

असफल योगी पुन्यकर्म करने वालों के लोकों को प्राप्तकर, वहां बहुत समय तक रहकर फिर अच्छे आचरण वाले धनवान मनुष्यों अथवा ज्ञानवान योगियों के घर में जन्म लेता है, परन्तु इस प्रकार का जन्म संसार में बहुत ही दुर्लभ है. (६.४१-४२)

हे कुरुनन्दन अर्जुन, वहां उसे पूर्वजन्म में संग्रह किया हुआ ज्ञान अपने आप ही प्राप्त हो जाता है तथा वह योगसिद्धि के लिए फिर प्रयत्न करता है. (६.४३)

वह बेबस की तरह अपने पूर्वजन्म के संस्कारों के द्वारा परमात्मा की ओर सहज ही आकर्षित हो जाता है. भगवत्प्राप्ति के जिज्ञासु भी वेद में कहे हुए सकाम कर्मफल की प्राप्ति से आगे का फल प्राप्तकर लेता है. (६.४४)

प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करने वाला योगी पिछले अनेक जन्मों से धीरे धीरे शूद्र होता हुआ सारे पापों से रहित होकर परमगति (अर्थात् मुक्ति) को प्राप्त होता है. (६.४५)

योगी (सकाम भाव वाले) तपस्वियों से भी श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञानियों से भी श्रेष्ठ है और सकाम कर्म करने वालों से भी श्रेष्ठ है. अतः हे अर्जुन तुम योगी बनो. (६.४६)

समस्त योगियों में भी जो योगीभक्त मुझ में तल्लीन होकर श्रद्धापूर्वक मेरी उपासना करता है, वही मेरे मत से सर्वश्रेष्ठ है. (१२.०२, १८.६६ भी देखें) (६.४७)